हृदयपूर्ण बोध

प्रिय मित्रों,

ऐसा कहा जाता है कि शिवाजी महाराज के गुरु रामदास स्वामी, ऐसे दिव्य तरीक़े से रामायण सुनाया करते थे, कि स्वयं हनुमानजी उन्हें सुनने के लिये वहाँ रूप बदलकर उपस्थित रहते थे। इन्हीं सत्रों में से एक सत्र में, रामदासजी ने उस पल का वर्णन किया जब माता सीता को अपहरण करके बंदी बना लिये जाने के बाद हनुमानजी ने उन्हें पहली बार देखा था। उन्होंने माता सीता को सफ़ेद फूलों से घिरी रावण की अशोक वाटिका में बैठा हुआ पाया था।

यह कहानी सुनकर, हनुमानजी झटके से अपनी तल्लीनता से बाहर आये। अपने असली रूप में आकर उन्होंने क्रोधित स्वर में कहा, "गुरुजी, मैं आपके वृत्तांत को बहुत ही रुचि से सुनता आया हूँ, क्योंकि मुझे अपने प्रभु की कथाएँ सुनने से अधिक प्रिय और कुछ नहीं है, लेकिन मुझे यह कहते हुए दु:ख हो रहा है कि इसमें एक विवरण सही नहीं है। जैसा कि आपने कहा, रावण की अशोक वाटिका के फूल सफ़ेद नहीं थे, बल्कि वे तो लाल थे। मैं इस बात को एक तथ्य के रूप में जानता हूँ, क्योंकि मैं वहाँ प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित था और मैंने उन फूलों को अपनी आँखों से देखा था।"

रामदासजी के वृत्तांत की विशेषता यह थी कि उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की गई थी। वे न सिर्फ़ रामायण का पाठ कर रहे थे, जैसा कि कई लोग करते हैं; वे भगवद् गीता में संजय की तरह उस दृश्य को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे थे, और जो कुछ उन्होंने देखा उसका वर्णन कर रहे थे। इस तरह की अनुबोधक क्षमताओं

सहित आने वाले दृढ़-विश्वास के साथ, रामदासजी ने हनुमानजी को समझाया कि शायद वे इस विवरण को भूल गये होंगे, क्योंकि निश्चित रूप से फूल तो सफ़ेद ही थे।

हनुमानजी ने घोषणा करते हुए कहा, "तो फिर आइये, इस समस्या को भगवान राम के समक्ष रखते हैं," और वे दोनों वहाँ से उड़कर चले गये।

भगवान राम ने दोनों पक्ष के मत सुनने के बाद कहा, "मुझे क्षमा कर दें, क्योंकि मैं आपके इस विवाद को सुलझाने में असमर्थ हूँ। आपको तो मालूम है कि उस समय मैं वहाँ पर उपस्थित नहीं था।"

भगवान राम से विदा लेकर हनुमानजी ने कहा, "आइये, अब माता सीता के पास चलते हैं। वे ही निश्चित रूप से बता पायेंगी कि फूल लाल रंग के थे या नहीं।"

उन्होंने माता सीता को अपनी समस्या बताई, और वे बोलीं, "रामदासजी सत्य कह रहे हैं। वहाँ के फूल पूर्णतया सफ़ेद थे। वे बिलकुल भी लाल नहीं थे।"

हनुमानजी आश्चर्य में पड़ गये, "यह कैसे सम्भव है। मैंने अपनी आँखों से देखा कि फूल लाल थे।"

"हाँ, तुमने उन्हें लाल रंग का देखा था, "यह कहते हुए माता सीता ने समझाया," क्योंकि उस समय रावण की कैद में मुझे बंदी के रूप में देखकर तुम्हारी आँखें गुस्से से लाल थीं। इसलिये तुम्हें सफ़ेद फूल लाल रंग के दिखाई दिये।"

हनुमानजी इतने क्रोधित थे कि उनके भावावेश ने उनकी दृष्टि को भ्रमित कर दिया था। इसीलिये उन्हें सफ़ेद फूल भी लाल दिखाई दिये। कुछ पल के लिये वे माया, भ्रम की स्थिति में चले गये थे, और इसलिये उन्होंने वास्तविक को अवास्तविक समझा, और अवास्तविक को वास्तविक। यह ग़लत सोच के कारण पैदा हुई ग़लत समझ की स्थिति थी।

उसी तरह से, कल्पना करें कि एक भयभीत यात्री रात में अकेला चल रहा है। वह एक छोटे से जुगनू को अंधेरे में चलते देखकर उसे भूत समझ बैठता है, उसके बाद वह रस्सी देखकर उसे साँप समझने की ग़लती करता है। दूसरा इंसान देर रात को अपने बॉस से फ़ोन पर बात करता है और उसकी पत्नी इसका यह निष्कर्ष निकालती है कि वह उससे बेवफ़ाई कर रहा है। सभी मामलों में, परिस्थितियों की वास्तविकता को नहीं देखा गया है, क्योंकि उस सच्चाई को ग़लत सोच के चश्मे से समझा गया। ये सभी परिदृश्य अज्ञात बातों से शुरू होते हैं : प्रकाश का स्रोत मालूम न होना, रस्सी की पहचान न कर पाना, फ़ोन पर बात करने वाले इंसान के बारे में अनजान होना। हर पल हम अज्ञात बातों का सामना करते हैं, लेकिन इससे माया या भ्रम पैदा नहीं होना चाहिये।

जिस वजह से हम वास्तविक को वास्तविक रूप में नहीं देख पाते,
इस ग़लत सोच और ग़लत समझ का कारण हमारा आंतरिक बोझ है
जिसे हम ढोते रहते हैं – यानी हमारे संस्कार।

बाबूजी महाराज ने इस माया के कारण को पहचान लिया था। जिस वजह से हम वास्तविक को वास्तविक रूप में नहीं देख पाते, इस ग़लत सोच और ग़लत समझ का कारण हमारा आंतरिक बोझ है जिसे हम ढोते रहते हैं – यानी हमारे संस्कार।

संस्कार भावनात्मक रूप से प्रभावपूर्ण अनुभवों की छापें हैं जो हमारी चेतना में गहराई से घर कर जाती हैं और हमारे अवचेतन मन में बनी रहती हैं। ये हमारे जीवन पर गुप्त रूप से प्रभाव डालती हैं, और अपने अतीत के अनुभवों की दृष्टि से हमें वर्तमान वास्तविकता को देखने देती हैं। हमारी पुरानी भावनाएँ और विचार *पैटर्न* यानी ढर्रा हमारी वर्तमान वास्तविकता पर आरोपित हो जाते हैं, जो कि आख़िरकार पक्षपातपूर्ण हो जाती है। घटनाओं को अब हम कैसे समझते हैं इस बात को भावनात्मक यादों का यह भण्डार निर्धारित करता है। यह ऐसा ही है मानो हम संसार को रंगीन चश्मे से देख रहे हों।

घटनाओं को अब हम कैसे समझते हैं
इस बात को भावनात्मक यादों का यह भण्डार
निर्धारित करता है। यह ऐसा ही है मानो हम
संसार को रंगीन चश्मे से देख रहे हों।

मुझे द *विज़ार्ड ऑफ़ ओज़* वाली कहानी याद आ रही है, जिसमें ओज़ शहर की हर चीज़ पन्ने जैसे हरे रंग की मानी जाती थी – लेकिन वह बात सिर्फ़ एक भ्रम थी। ओज़ शहर बाकी शहरों जैसा ही था। हरे रंग का भ्रम कायम रहा क्योंकि वहाँ के हर नागरिक को हरे रंग के शीशे वाले चश्मे दिये गये थे, जिसे उन्हें हर समय पहनकर रखना होता था। चश्मे के रंगीन शीशे ने वहाँ के नागरिकों को इस ग़लतफ़हमी में रखा कि वह शहर हरे रंग का था।

वह तो एक काल्पनिक कहानी थी, लेकिन हमारी वास्तविक-जीवन की दृष्टि भी उसी तरह से विकृत हो गई है। हम अपने जीवन में जिन पूर्वाग्रहों का अनुभव करते हैं वे इससे भी बुरे हैं, क्योंकि ओज़ शहर के निवासी, जिनकी दृष्टि एक चश्मे से धुँधली हो गई थी, उसके विपरीत हमारे पास अपने बोध को धुँधला करने वाली कई परतें हैं। चश्मे को तो आसानी से हटाया जा सकता है, लेकिन हमारी आवरण रूपी परतें इतनी गहराई में दबी होती हैं कि हमारी आत्मा इन्हें अपनी चेतना के साथ एक से दूसरे जीवन में ले जाती है। हमने जो "चश्मे" पहन रखे हैं वे सिर्फ़ एक ही रंग के नहीं हैं, बल्कि उनके शीशों में विभिन्न रंगों की छटा मौजूद है, जो उन्हें लगभग अपारदर्शी बना देती है। और तो और, ये परतें अचानक ही उभर आती हैं। जब वास्तविकता के प्रकाश को हमारी चेतना में जाने से रोक दिया जाता है, तब हम अंधकार में, एक तरह के नरक में जीते हैं।

संस्कार हमारी समझ को पक्षपातपूर्ण बना देते हैं, और इस कारण से हम चीज़ों को अच्छे या बुरे के रूप में देखने लगते हैं। हम कुछ विशेष चीज़ों को सुंदर और अन्य चीज़ों को बदसूरत मानते हैं; कुछ चीज़ों को पवित्र और अन्य चीज़ों को अपवित्र मानते हैं। हम इस सच को भूल जाते हैं कि पवित्रता हर जगह

सच्ची निष्पक्ष दृष्टि चीज़ों को उनके वास्तविक रूप में देखती है,
वह भी बिना कुछ जोड़े या घटाये, भावनात्मक स्तर पर कोई राय
कायम किये या अर्थ निकाले बग़ैर।
सच्ची दृष्टि तभी उभरती है जब सभी आवरण हट जाते हैं, और
हमारे शास्त्रों ने इसी पवित्र दृष्टि को दर्शन कहा है।

मौजूद है, सुंदरता हर जगह मौजूद है। किसी चीज़ के बारे में धारणा बना लेना यह देखने वाले की आँखों पर निर्भर करता है। हम इस राय या धारणा को वास्तविकता पर आरोपित कर देते हैं। सच्ची निष्पक्ष दृष्टि चीज़ों को उनके वास्तविक रूप में देखती है, वह भी बिना कुछ जोड़े या घटाये, भावनात्मक स्तर पर कोई राय कायम किये या अर्थ निकाले बग़ैर। सच्ची दृष्टि तभी उभरती है जब सभी आवरण हट जाते हैं, और हमारे शास्त्रों ने इसी पवित्र दृष्टि को दर्शन कहा है।

अधिकांश लोग दर्शन को सीमित अर्थ में समझते हैं, जैसे, किसी संत-सुलभ व्यक्ति की झलक पाना। कई लोगों ने अपने जीवनकाल में भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन किया होगा लेकिन शायद कोई एकाध ही ऐसा होगा जिसने उन्हें अपने वास्तविक रूप में देखा होगा। इस प्रकार, वास्तव में उनके दर्शन किसे हुए? यह बात मुझे बाबूजी के कथन की याद दिलाती है – "कई लोग हमें देखने आते हैं, लेकिन वास्तव में हमें कोई नहीं देखता।"

कई लोग भगवान श्रीकृष्ण से नफ़रत करते थे। सिर्फ़ कुछ ही लोग उनसे प्रेम करते थे। उन्हें महज़ एक जादूगर कहते हुए, दुर्योधन ने उनका अपमान किया। अर्जुन ने उनकी प्रशंसा की, लेकिन एक सीमित रूप में, एक मित्र के रूप में उन्हें देखा। यहाँ तक कि राधा भी, भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपने असीम प्रेम और अपनी श्रद्धा में, उन्हें ब्रह्माण्ड के स्वामी की पूर्ण भव्यता में नहीं देख पाईं। उन्हें देखने वाले सभी लोगों का दृष्टिकोण अलग-अलग था। किसी ने भी संपूर्ण सच को नहीं देखा।

ऐसा इसलिये है क्योंकि हर एक इंसान अनूठा होता है। इस संसार के करोड़ों लोगों में से, कल्पना करें कि हम सामूहिक रूप से कितनी सारी छापें लिये हुए हैं, पृथ्वी पर बिताये अपने साझा पल में हम कितने अधिक प्रवृत्तिजन्य झुकाव लाते हैं, और इसके कितने ज़्यादा व्यक्तिगत दृष्टिकोण होते हैं। सामान्य तौर पर, इसका परिणाम होता है असहमति और एकता का अभाव।

हम हमेशा से ऐसे नहीं थे। मूलत:, हर एक की चेतना समान थी। वास्तविकता के प्रति सभी लोगों का दृष्टिकोण समान था। ग़लत सोच के कारण मतभेद पैदा हुए, और हमने अपने अलग-अलग छोटे-छोटे संसार बनाने शुरू कर दिये। बाबूजी हमारे इन संसारों को द्वीप के रूप में वर्णित करते हैं – ऐसे द्वीप जो एक-दूसरे से अलग होकर, एकता से दूर जाकर, वैयक्तिकता, एकांत और अहंकार से प्रेरित अस्तित्व की ओर अग्रसर हैं।

अहंकार, अपने मूल स्वभाव से, आत्म-केन्द्रित होता है, और वह अपना वजूद बनाये रखना चाहता है। अहंकार का सबसे बड़ा डर है कि कहीं उसकी पहचान नष्ट न हो जाये। उसके दृष्टिकोण से, शारीरिक मृत्यु भी अहंकार के विनाश से बेहतर है। अहंकार जो अपने वजूद की निरंतरता को बनाये रखने में व्यस्त है, वह ख़ुद को देखना भी चाहता है, मानो शीशे में देख कर सुनिश्चित करना चाहता हो कि उसका अस्तित्व अब भी कायम है।

जब अहंकार का अपना कोई स्वरूप ही नहीं होता तो फिर वह ख़ुद को कैसे देख सकता है? इसका जवाब यह है कि यह जानने योग्य वस्तुओं से ख़ुद को जोड़ लेता है, जो व्यक्तिपरक ज्ञाता के लिये दृष्टिगोचर और बाहरी होती हैं। किसी बाहरी चीज़ की ओर संकेत करके, यह घोषणा करता है, "मैं वह हूँ," और यह संतुष्ट हो जाता है। इस तरीक़े से, यह अहंकार हमारे मन, शरीर, या फिर इंसान के शरीर से बाहर की चीज़ें जैसे संस्कृति, भाषा, स्वाद, साज़ो-सामान, इत्यादि से ख़ुद की पहचान बना लेता है।

किसी ख़त का जवाब देते हुए, बाबूजी ने एक बार कहा - "यह अच्छी बात है कि आप महापुरुषों (संतों) के दर्शन करना चाहेंगे। बेहतर होगा कि आप सिर्फ़ ख़ुद अपना दर्शन करने की कोशिश करें।" अपनी आत्मा का दर्शन करने के लिये, इंसान को अहंकार से बनाई गई उन ग़लत पहचानों को छोड़ना होगा। लेकिन अहंकार अपनी ग़लत पहचानों से बहुत अधिक आसक्त रहता है। जब उन ग़लत पहचानों पर आँच आती है, तब यह आक्रामक रूप से बरस पड़ता है। ख़ुद से पूछें कि जब आप किसी चीज़ को अपना मानते हैं - जैसे कि आपका धर्म, आपका राष्ट्र, आपका समुदाय, आपका परिवार, इत्यादि, और कोई उसकी निंदा करता है तब आप कैसा महसूस करते हैं। उस भावना की दृढ़ता आपके अहंकार की उन पहचानों की तीव्रता का संकेत है - जो आपकी वास्तविक पहचान पर चढ़े मुखौटे हैं।

मुखर अहंकार एकता को समाप्त कर देता है। जब आप किसी समूह में काम करते हैं, तब हो सकता है कि दूसरे लोग आपकी कार्यप्रणाली से अलग हटकर काम करना चाहते हों। यदि आप अपनी धारणाओं को बहुत ज़्यादा महत्त्व देते हैं तो, ऐसे में दूसरों के रचनात्मक सुझाव भी आपको व्यक्तिगत खतरों जैसे प्रतीत होंगे। कल्पना करें कि एक समूह में यदि हर कोई "मेरी मर्ज़ी या फिर कुछ भी नहीं," जैसी शैली की कार्यप्रणाली अपनाये! तो सोचिये इसका परिणाम क्या होगा! दृष्टिकोण में मतभेद तभी सहायक होते हैं जब हम स्वीकृति के भाव में ढलनशील बने रहें और अहंकारी टकरावों से दूर रहें।

कार्य करने का अहंकारिक ढंग हमें दिव्य ऊर्जा की वाहिकाएँ बनाने के मालिक के काम में बाधा उत्पन्न करता है। यदि दिव्य ऊर्जा के प्रवाह में हमारे भीतर से प्रतिरोध आये, तो मनमुटाव पैदा होता है। ध्यान के दौरान "झटके" जैसा प्रतिभास हमारी प्रणाली में प्रतिरोध का संकेत है।

अपनी आत्मा का दर्शन करने के लिये,
इंसान को अहंकार से बनाई गई उन ग़लत
पहचानों को छोड़ना होगा।

अहंकार और संस्कार एक-दूसरे के सहयोगी हैं। संस्कार तभी बनते हैं जब हम भावनात्मक रूप से प्रतिक्रिया देते हैं। अहंकार हमारे भीतर का प्रतिक्रियाशील तत्त्व है, जो संस्कारों का बनना शुरू करवाता है। हमारा अहंकार प्रतिक्रिया क्यों करता है? यह तब प्रतिक्रिया देता है जब उसकी किसी पहचान को बढ़ावा मिलता है या वह खतरे में पड़ जाती है। यह प्रतिक्रिया पसंद या नापसंद के रूप में सामने आती है। उस प्रतिक्रिया में पैदा हुई सकारात्मक और नकारात्मक भावना बाद में छाप बन जाती है।

एक संपूरक रूप में, संस्कार उन चीज़ों से बनते हैं जो चीज़ें अहंकार से प्रभावित होती हैं। अहंकार और संस्कार, माया के सह-निर्माता हैं, वे हमारे दृष्टिकोण को धुँधला बनाकर वास्तविकता के प्रति हमारी दृष्टि को विकृत कर देते हैं।

व्यक्तिगत प्रारब्ध के ये पेड़ अहंकार की मिट्टी में बोये गये संस्कार रूपी बीजों से उगते हैं। हमारे संस्कार हमारे दिल के इरादों को पैदा करते हैं, जिन्हें हमारा मन पूरा करने में लग जाता है। मन के कार्यों और उसकी प्रवृत्तियों को वृत्ति कहते हैं। बदले में हमारी वृत्तियाँ, हमारी प्रवृत्तियों को प्रेरित करती हैं। वृत्ति और प्रवृत्ति, दोनों मिलकर सत्त्व, रजस और तमस - जैसे तीन गुणों की विशेषताओं के साथ हमारी प्रकृति (स्वभाव) को प्रभावित करती हैं।

हमारे स्वभाव के गुणों के अनुसार, हम कुछ न कुछ विशेष कार्यों को दोहराते ही रहते हैं। एक इंसान जो खाने-पीने का शौकीन है वह बार-बार रेस्तराँ जाता रहता है। पानी की लहरों पर *सर्फ़िंग* करने वाला लहरों का पीछा करता जाता है। सिनेमा देखने का शौकीन हमेशा ही फ़िल्में देखने जाता रहता है। ऐसी गतिविधियाँ एक विशेष प्रकार के संस्कारों के संचयन में मदद करती हैं, जो हर एक इंसान के स्वभाव की भाँति विशिष्ट होते हैं। जीवन-दर-जीवन, चलने वाली निरंतर गतिविधियाँ और संस्कारों का संचयन हमारी प्रकृति (स्वभाव) को व्यापक रूप से परिभाषित करते हैं। हम इसे ही प्रारब्ध (नियति) मानते हैं।

व्यक्तिगत प्रारब्ध के ये पेड़ अहंकार की मिट्टी में बोये गये संस्कार रूपी बीजों से उगते हैं। हमारे संस्कार हमारे दिल के इरादों को पैदा करते हैं, जिन्हें हमारा मन पूरा करने में लग जाता है। मन के कार्यों और उसकी प्रवृत्तियों को वृत्ति कहते हैं। बदले में हमारी वृत्तियाँ, हमारी प्रवृत्तियों को प्रेरित करती हैं। वृत्ति और प्रवृत्ति, दोनों मिलकर सत्त्व, रजस और तमस - जैसे तीन गुणों की विशेषताओं के साथ हमारी प्रकृति (स्वभाव) को प्रभावित करती हैं।

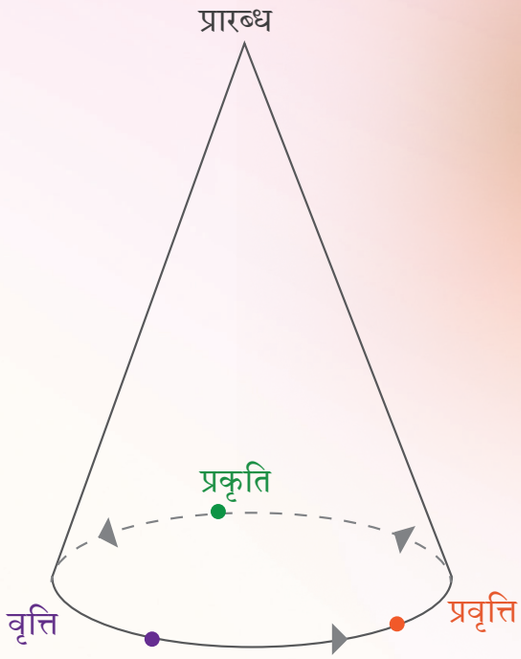

हम अपनी-अपनी नियति के निर्माता हैं, लेकिन एक दैवीय नियति भी होती है - एक ऐसी नियति जिसे सिर्फ़ तभी समझा जा सकता है जब हमने व्यक्तिगत तौर पर अपने निर्मित संसारों का विलय कर लिया हो और अपना ख़ुद का व्यक्तिगत प्रलय पूरा किया हो।

इसी उद्देश्य से महान ऋषि पतंजलि ने योग का पथ प्रस्तुत किया था, जिससे कि हम अपनी वृत्तियों को हटा सकते हैं जो अन्यथा अपने आप ही हमारे प्रारब्ध का निर्माण करेंगी और हमें माया के भँवर में घुमाती रहेंगी। इसी समान उद्देश्य से पूज्य बाबूजी ने उन संस्कारों को हटाने के तरीक़े सुझाये थे जो हमारी वृत्तियों को कायम रखते हैं। चित्त-वृत्ति-निरोध एक अर्थ में योग की अवस्था है। अपनी वृत्तियों को बढ़ावा देना हमारी मदद कभी नहीं करेगा, इसीलिये यह अयोग्य होता है, न कि योग।

दुर्भाग्य से, अहंकार की प्रवृत्ति अपनी रचना का बचाव करने की और वृत्ति, प्रवृत्ति, प्रकृति व प्रारब्ध से अपनी पहचान बनाने की है। इससें बदलाव लाना मुश्किल हो जाता है। परम प्रिय चारीजी कहा करते थे कि एक मूर्ख ग़लतियाँ करने के बाद ही उन्हें पहचान पाता है, यदि वह ऐसा करे तो; एक बुद्धिमान इंसान अपनी ग़लतियों को उन्हें करते वक़्त पहचान लेता है; और एक समझदार इंसान घटना घटित होने से पहले ही अपनी ग़लतियों को पहचान जाता है और उन्हें टाल देता है।

ऐसे किसी इंसान को कैसे श्रेणीबद्ध किया जाये जो अपनी ग़लतियों को देखता तो है, लेकिन वह इस बात पर अड़ा रहता है कि उसके कार्य सही हैं? ऐसा इंसान कैसे रूपांतरित हो सकता है? एक इंसान अपनी व्यक्तिगत प्रलय को कैसे ला सकता है, जबकि वह अपनी रचना का निर्माण करने में इतना व्यस्त हो? यह ताँबे का सोने में परिवर्तित होने जैसा है; क्या कभी ऐसा होकर रहेगा? यह कथन शायद इस बात को समझाता है कि हम ख़ुद को बदलने में बुरी तरह असफल क्यों हो जाते हैं। यह इस बात को भी समझाता है कि तेईस वृत्तों वाले बाबूजी के दर्शाये चित्र में, अहंकार के वृत्त माया के वृत्तों को बल क्यों प्रदान करते हैं।

सहज मार्ग हमें एक ऐसी जीवनशैली पर महारत हासिल करने के लिये आंतरिक प्रशिक्षण प्रदान करता है जो हमें संस्कार बनाये बग़ैर नेक काम करने देती है। संस्कारों के बोझ को हटाना आसान है। हमारी शाम

की सफ़ाई के दौरान दिनभर के एकत्रित संस्कार निकाले जाते हैं। इसी जन्म के पिछले संस्कारों की सफ़ाई व्यक्तिगत सिटिंग के माध्यम से प्रशिक्षक करते हैं। भण्डारों के दौरान, सामूहिक सत्संगों के दौरान, मालिक की भौतिक उपस्थिति में, और यदि अभ्यासी समर्पित हो एवं लयावस्था तक पहुँच जाये तो किसी भी समय पर पिछले जन्मों के संस्कार निकाले जाते हैं।

संस्कारों के बनने को रोकना एक तरह से चुनौती ही है। इस संसार में जीवन जीते हुए छापें बनाने से बचना कोयले की खदान में कोयले के चूरे से बचने, या बरसाती तूफ़ान में भीगने से बचने जैसा है। हम बरसात से नहीं बच सकते हैं, लेकिन हम *रेनकोट* पहनकर ख़ुद को भीगने से बचा सकते हैं। हमारे दिल और दिमाग़ के लिये वह '*रेनकोट*' क्या हो सकता है, जिससे कि हम भावनात्मक अशांति के दौरान भी अप्रभावित बने रहें? यह सतत स्मरण का सुरक्षात्मक कवच ही है जो ईश्वर के प्रति प्रेम से सराबोर है।

सतत स्मरण एक अलग तरह का निवारक है। हमारी चेतना को मलिन करने से पहले ही यह छापों को हटा देता है। विनम्रता के सुरक्षात्मक चंदोवे में, सतत स्मरण अहंकार को परिशुद्ध करके हमें मतभेद के प्रभावों से बचा लेता है, ताकि हमारा दिव्य गंतव्य स्पष्ट रूप से हमारी आँखों के सामने बना रहे। जब हमारी दृष्टि पूर्ण हृदय से हमारे रचयिता के प्रेम में सराबोर रहती है, तब सांसारिक काम और भ्रामक बातें भी दैवीय एवं असाधारण बन जाती हैं। यदि ईश्वर दिव्य है, तो उसकी रचना भी दैवीय होगी, क्योंकि अब स्रोत और परिणाम दोनों एक ही हैं। फिर सबकुछ दैवीय हो जाता है।

प्रेम और आदरसहित,

कमलेश डी. पटेल

पूज्य श्री बाबूजी महाराज

के 123वें जन्मोत्सव के अवसर पर दिया गया संदेश

29, 30 अप्रैल और 1 मई 2022

heartfulness™
advancing in love